३.२. भाषा की उत्पत्ति

(विविध मतों की समीक्षा)

'भाषा की उत्पत्ति' यह विषय अत्यन्त उलझा हुआ है। इस विषय पर विद्वानों ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं, वे अपूर्ण और अनिर्णयात्मक हैं। अधिकांश विचार एकांगी हैं। केवल एक मत को मानने से भाषा की उत्पत्ति की समस्या हल नहीं होती है। कुछ विचार पूर्णतया त्रुटिपूर्ण हैं और कुछ अंशतः। विद्वानों द्वारा प्रस्तावित मतों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है। साथ ही उनकी न्यूनताओं का संकेत किया गया है।

भाषा की उत्पत्ति के लिए दो बातें अनिवार्य हैं—१. वाग्यन्त्र से ध्वनन या वर्णोच्चारण की क्षमता प्राप्त करना। २. उच्चरित ध्वनि का अर्थ के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रारम्भ। प्रथम बात प्रायः सभी पशु-पक्षियों एवं अन्य जीवों में प्राप्त होती है। उनके पास ध्वनि-यन्त्र मुँह है। उसके द्वारा वे कुछ न कुछ ध्वनि उत्पन्न करके अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं। काँव-काँव, चीं-चीं, भों-भों, म्याऊँ-म्याऊँ आदि ऐसे ही शब्द हैं। पशु-पक्षियों में स्पष्ट उच्चारण या व्यक्त वाक् का अभाव है, अतः वे स्पष्ट रूप से बोलने में असमर्थ हैं। मनुष्य को बोलने या कुछ कहने की क्षमता जन्म से प्राप्त है, अतः वह जन्म से वाग्-यन्त्र या वागिन्द्रिय का प्रयोग करता है। विचारणीय विषय दूसरी बात है—मनुष्य ने सर्वप्रथम शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कैसे स्थापित किया? इस बात का उत्तर ही जिज्ञासा का विषय है। एक बार शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की प्रक्रिया प्रारम्भ होने पर आगे के लिए यह प्रक्रिया स्वयं चल पड़ती है।

भाषोत्पत्ति-विषयक अनेक सिद्धान्तों के प्रचलन के बाद भी भाषा की उत्पत्ति का निश्चित और निर्णयात्मक उत्तर प्राप्त न होने के कारण भाषा-वैज्ञानिकों ने इस विषय को भाषा-विज्ञान के क्षेत्र से बाहर घोषित किया है। १८६६ ई० में पेरिस में भाषा-विज्ञान की एक समिति (ला सोसिएते द लेंगिस्तीक, La sociètè de linguistique) की स्थापना हुई थी। उसने अपने अधिनियम में निर्देश दिया है कि 'भाषा की उत्पत्ति और विश्वभाषा-निर्माण' इन दो विषयों पर विचार नहीं होगा।[1] इस बहिष्कार का कारण यह है कि भाषोत्पत्ति-विषयक सिद्धान्त अनुमान पर आश्रित हैं। विज्ञान अनुमान पर आश्रित न होकर तथ्यों पर निर्भर होता है। भाषा का मूलरूप अप्राप्य है, अतः भाषा-विज्ञान इस दिशा में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। यह दर्शन, मानव-विज्ञान या समाज-विज्ञान का विषय हो सकता है।

---

1. Otto Jespersen : *Language*, p. 96.

यह विषय सामान्य लोकप्रियता का है, अतः प्रस्तावित सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा रहा है।

१. दिव्योत्पत्ति-सिद्धान्त (Divine Theory)—यह सबसे प्राचीन मत है। इस मत का कथन है कि जिस प्रकार परमात्मा ने मानव-सृष्टि की, उसी प्रकार मानव के लिए एक परिष्कृत भाषा भी दी। इस मत में प्रत्येक कार्य के मूल में दैवी शक्ति की सत्ता मानी जाती है। उस दैवी शक्ति ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में ही वेदों का ज्ञान दिया, जिससे मानव अपना कार्य-कलाप चला सका। इस प्रकार वैदिक संस्कृत-भाषा मूल भाषा के रूप में प्राप्त हुई। वेद, उपनिषद्, दर्शन-ग्रन्थ और स्मृतियों में अनेक प्रमाण इस विषय के प्राप्त होते हैं कि ईश्वर से ही वेदों की उत्पत्ति हुई।[1]

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।

(ऋग्वेद ८-१००-११)

अर्थात् वाग्देवी (भाषा) को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं। इस मन्त्र में भाषा की दैवी उत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख है। 'अइउण्' आदि १४ माहेश्वर सूत्र शिव के डमरू से उत्पन्न माने जाते हैं। यह भी भाषा की दैवी उत्पत्ति का सूचक है।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।

संस्कृत आदिभाषा है, इस कथन की परंपरा को लेकर बाद में अनीश्वरवादी जैन और बौद्धों ने भी अर्धमागधी और पालि (या मागधी) को आदिभाषा कहना प्रारम्भ किया। ईसाइयों, मुख्यतया कैथोलिकों ने 'प्राचीन विधान' (Old Testament) की हिब्रूभाषा को और मुसलमानों ने कुरान की भाषा अरबी को आदिभाषा घोषित किया है। बाइबिल में उल्लेख है कि मनुष्य-जाति महत्त्वाकांक्षा के कारण स्वर्ग तक पहुँचने के लिए बाबुल में गगनचुम्बी मीनार बना रही थी। ईश्वर ने मानव-जाति की शक्ति से भयभीत

---

१. (क) **तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे ।**
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ (ऋग्० १०-९०-९)

(ख) **यस्माद् ऋचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।**
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसोमुखम्० ॥ (अथर्व० १०-७-२०)

(ग) **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद्**
यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः०।

(बृहदारण्यक उपनिषद् २-४-१०)

(घ) **ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य—१-१-३ पर शंकराचार्य।**

(ङ) **ननु चोक्तम्। नहि छन्दांसि क्रियन्ते। नित्यानि छन्दांसीति। यद्यप्यर्थो नित्यः।**
या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा अनित्या। (महाभाष्य ४-३-१०१)

(च) **अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।**
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुः सामलक्षणम् ॥ (मनुस्मृति १-२३)

(छ) **सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।**
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (मनु० १-२१)

होकर कारीगरों की भाषा गड़बड़ा दी। फलस्वरूप कारीगर एक दूसरे की भाषा न समझ सके और मीनार नहीं बन पाई। अन्यथा सर्वत्र हिब्रूभाषा ही होती।

एक जर्मन विद्वान् सुसमिल्श (Süssmilch) ने भाषा की दैवी उत्पत्ति का समर्थन करते हुए कहा है कि 'भाषा मानवकृत नहीं है, अपितु परमात्मा से साक्षात् उपहार रूप में प्राप्त हुई है।'[1] जर्मन लोग जर्मन भाषा को आदिभाषा एवं देवभाषा कहते हैं। इसी प्रकार ग्रीस के विद्वानों में 'फूसेइ-थेसेइ' का विवाद शताब्दियों तक चला कि भाषा ईश्वरीय देन है या मानवकृत।

समीक्षा

इस सिद्धान्त पर मुख्य आपत्तियाँ ये की गई हैं—

१. यह सिद्धान्त तर्क या विज्ञान-संगत नहीं है। केवल आस्था पर निर्भर है। अपनी भाषा को मुख्यता देने के लिए सबने उसे आदिभाषा या देवभाषा कहा है।

२. यदि भाषा ईश्वर-प्रदत्त होती तो सृष्टि में भाषा-भेद नहीं होता। पशु-पक्षियों की भाषा के तुल्य मानवमात्र की एक भाषा होती।

३. १८वीं शती के प्रसिद्ध विचारक जर्मन विद्वान् हेर्डेर (Johann Gottfried Herder) ने अपने पुरस्कृत निबन्ध 'Origin of Language' (१७७२) में दैवी सिद्धान्त का दृढ़ता से खण्डन करते हुए लिखा है कि यदि भाषा ईश्वरकृत होती तो यह अधिक सुव्यवस्थित और तर्कसंगत होती। अधिकांश भाषाएँ अव्यवस्थित और त्रुटिपूर्ण हैं।[2]

४. यदि भाषा ईश्वर-प्रदत्त होती तो वह पूर्ण विकसित होती। उसमें विकास संभव नहीं था। भाषा में विकास, परिवर्तन और परिवर्धन दिखाई देता है, अतः ईश्वरीय नहीं माना जा सकता है।

५. यदि भाषा ईश्वरीय देन होती तो वह जन्म से ही मनुष्य को प्राप्त हो जाती। उसे समाज से सीखने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है।

सभी विद्वान् इस विचार से सहमत हैं कि किसी भाषा की उत्पत्ति ईश्वरीय या दैवी हो या न हो, परन्तु एक बात सत्य है कि सार्थक एवं स्पष्ट उच्चारण के योग्य ध्वनि-यन्त्र और उसको संचालित करने वाली बुद्धि मनुष्य को ईश्वरीय देन है। यदि यह व्यक्तवाक् मानव को ईश्वरीय देन के रूप में प्राप्त न होती तो मानव भी पशुओं के तुल्य दयनीय होता।

सामान्यतया यह मत विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है।

२. संकेत-सिद्धान्त (Agreement Theory)—इस सिद्धान्त को निर्णयवाद, निर्णय-सिद्धान्त, स्वीकारवाद आदि नामों से भी कहा जाता है। इस मत के प्रवर्तक १८वीं

---

1. 'Language could not have been invented by man, but was a direct gift from God'. Süssmilch.
   Otto Jespersen : *Language*, p. 27.
2. *Language* : Otto Jespersen, p. 27.

शती के प्रसिद्ध फ्रेंच विचारक रूसो (Rousseau) हैं।[1] इसके प्रवर्तक का अभिप्राय है कि प्रारम्भ में मनुष्य पशुओं आदि के तुल्य सिर हिलाना आदि आंगिक संकेतों से अपना अभिप्राय स्पष्ट करता था। बाद में इन संकेतों से काम नहीं चला तो उन्होंने एक सभा की और निर्णय किया कि इन-इन वस्तुओं के ये-ये नाम निर्धारित किये जाते हैं। इसको 'सामाजिक समझौता' समझा जा सकता है। इस समझौते से ध्वन्यात्मक संकेतों की उत्पत्ति हुई और उससे भाषा का प्रादुर्भाव हुआ।

इससे मिलता-जुलता हुआ भाव भामह ने 'काव्यालंकार' में प्रस्तुत किया है—

इयन्त ईदृशा वर्णा ईदृगर्थाभिधायिनः।
व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं समयः कृतः॥ (काव्यालंकार ६-१३)

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में लोक-व्यवहार के लिए यह निर्णय किया गया था कि इतने वर्ण, इस क्रम से रखे जाने पर इस प्रकार के अर्थों का बोध करायेंगे।

समीक्षा

इस सिद्धान्त की कुछ स्पष्ट न्यूनताएँ हैं—

१. बिना भाषा के सभा का आयोजन कैसे हुआ?

२. भाषा के बिना विचार-विनिमय कैसे हुआ?

३. विचार-विनिमय की क्या भाषा थी?

४. विभिन्न अर्थों के लिए संकेत-शब्दों के निर्माण के लिए क्या आधार था? व्यक्ति-विशेष के कथन को सर्वसम्मत मान लिया गया, या सबने अपने सुझाव दिये। अन्तिम निर्णय की क्या प्रणाली थी?

५. यदि भाषा के बिना सभा का आयोजन, संकेत-निर्माण एवं संकेतों की सामाजिक संपुष्टि हो सकती है तो भाषा की क्या आवश्यकता रह जाती है।

६. भाषा के बिना सभा का आयोजन, विचार-विनिमय एवं निर्णय आदि कार्य असंभव हैं।

अतः यह सिद्धान्त मान्य नहीं है।

३. रणन-सिद्धान्त (Ding-dong Theory)—इस सिद्धान्त को धातु-सिद्धान्त (Root Theory), अनुकरणन-सिद्धान्त, अनुरणनमूलकतावाद, अनुरणात्मक अनुकरण, डिंग-डांग-वाद आदि नामों से निर्दिष्ट किया गया है। इस मत के मूलप्रवर्तक प्लेटो (Plato) थे। इसको हेस (Heyes) ने बढ़ाया और मैक्स मूलर (Max Müller) ने व्यवस्थित रूप दिया। इस मत के अनुसार शब्द और अर्थ में एक रहस्यात्मक स्वाभाविक

---

1. "Rousseau imagined the first men setting themselves more or less deliberately to frame a language by an agreement similar to the 'Contract Social', which according to him was the basis of all social order."

Otto Jespersen : *Language*, p. 26.

सम्बन्ध है। इस मत का कथन है कि प्रकृति में एक सामान्य नियम है कि किसी भी वस्तु पर चोट मारने पर एक विशेष ध्वनि (झंकार) होती है। यह विशेष ध्वनि ही उसकी विशेषता है। लोहा, टिन, लकड़ी, काँच आदि पर चोट मारने पर विशेष ध्वनि (नाद) निकलती है, इसे रणन कहा जाता है। यही उस वस्तु की पहचान है। इसी रणन के आधार पर लोहा, लकड़ी और काँच आदि में अन्तर किया जाता है।[1]

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रत्येक वस्तु को देखकर मानव-मस्तिष्क में झंकार (रणन) हुई। उसी आधार पर प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग नाम रखा गया। यह नामकरण-प्रक्रिया रणन-मूलक थी। नदी की कल-कल या नद-नद ध्वनि से प्रेरित होकर उसका नाम नदी रखा गया। इसी प्रकार गो, अश्व, पर्वत, मनुष्य आदि नाम रखे गये। इसी प्रकार लगभग ४००-५०० मूलशब्दों या मूलधातुओं का निर्माण किया गया। वस्तुओं का नाम रखने के बाद मानव की यह विशेष शक्ति समाप्त हो गई। पुरानी धातुओं से ही बाद में नये शब्दों की रचना होती रही।

समीक्षा

१. यह सिद्धान्त विचार करने पर इतना सदोष था कि स्वयं प्रो० मैक्स मूलर ने इसे बाद में छोड़ दिया था।

२. 'डिंग-डांग' घण्टे की ध्वनि को कहते हैं। घण्टे की झंकार के आधार पर इसका यह नाम पड़ा। इस सिद्धान्त में ४००-५०० मूलधातुएँ या मूलशब्द स्वीकार किये गये, अतः इसे धातु-सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि किस वस्तु को देखकर क्या ध्वनि मस्तिष्क में झंकृत होती है। प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में पृथक् ध्वनियाँ झंकृत हो सकती हैं और एक वस्तु के अनेक नाम पड़ेंगे।

३. यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ में रहस्यात्मक स्वाभाविक सम्बन्ध मानता है। शब्द और अर्थ का सांकेतिक सम्बन्ध है, न कि स्वाभाविक।

४. कुछ सीमित धातुओं की कल्पना नितान्त त्रुटिपूर्ण है।

५. आदिम मानव में शब्द या धातु के निर्माण की शक्ति थी। वह बाद में नष्ट हो गई। यह अत्यन्त अवैज्ञानिक कल्पना है।

६. घण्टे आदि में यह ध्वनि है, परन्तु सभी पदार्थों में यह ध्वनि नहीं है, अतः उनका नामकरण संभव नहीं है।

यह मत अस्वीकृत होने पर भी रोचकता के लिए प्रचलित है।

---

1. "Ding-dong theory, according to which there is a mystic harmony between sound and sense.' 'Language is the result of an instinct, a faculty peculiar to man in his primitive state, by which every impression from without received its vocal expression from within. A faculty which became extinct when its object was fulfilled."

—*Language* : Otto Jespersen, p. 415.

४. ध्वन्यनुकरण-सिद्धान्त (Onomatopoic Theory, Bow-wow Theory, Echoic Theory)—इस सिद्धान्त को अनुकरण-सिद्धान्त, ध्वन्यात्मकानुकरण-सिद्धान्त, अनुकरणमूलकतावाद, शब्दानुकरणवाद, भों-भों-वाद आदि कहा जाता है। अंग्रेज़ी में कुत्ते की ध्वनि को Bow-wow बाउ-वाउ कहते हैं, अतः हिन्दी में यह भों-भों-वाद हुआ। इस सिद्धान्त का मूल नाम 'ओनोमेटोपोइक थ्योरी' है, जिसका अर्थ है ध्वन्यनुकरण-सिद्धान्त। इसको 'इकोइक थ्योरी' भी कहते हैं, क्योंकि यह सिद्धान्त Echo (इको) प्रतिध्वनि पर निर्भर है। प्रो० मैक्स मूलर ने इस सिद्धान्त को उपहासास्पद बताते हुए इसका नाम 'बाउ-वाउ सिद्धान्त' अर्थात् भों-भों-वाद मनोरंजनार्थ रखा।

इस सिद्धान्त का अभिमत है कि प्राकृतिक वस्तुओं, पशु-पक्षियों आदि की ध्वनि के अनुकरण पर विभिन्न वस्तुओं के नाम रखे जाते हैं। जो वस्तु जो या जैसी ध्वनि करती है, उसका वैसा ही नाम पड़ता है। इस प्रकार भाषा की रचना हुई। जैसे—काँव-काँव से काक और कौवा, कू-कू से कोयल, झर-झर ध्वनि से निर्झर (झरना), पट्-पट् से पटाखा, दर्-दर् ध्वनि से दर्दुर (मेंढक) आदि। भाषा में ध्वनिसाम्य के आधार पर ऐसे कुछ शब्द मिलते हैं। जैसे—भोंकना, खाँसना, थपथपाना, गुर्राना, रिरियाना, रंभाना, हिनहिनाना, खटखटाना, सर-सर, पट-पट, खटा-खट, चट-पट, झन-झन, धड़ा-धड़, बड़-बड़, तड़-तड़ आदि। श्रावण प्रत्यक्ष के तुल्य चाक्षुष प्रत्यक्ष के आधार पर भी कुछ शब्द बनते हैं। जैसे—चमाचम, जगमग, चकमक, लकलक आदि। ध्वनि-मूलक कुछ नाम बालक भी रख लेते हैं। जैसे—म्याऊँ (बिल्ली), पों-पों (मोटर), भों-भों (कुत्ता), में-में (भेंड़), बे-बे (बकरी), घुग्घू (उल्लू) आदि।

समीक्षा

इस सिद्धान्त पर ये आपत्तियाँ की गई हैं—

१. प्रो० रेनन (Renan) ने इस पर आपत्ति की है कि यदि मनुष्य पशु-पक्षियों जैसे तुच्छ जीवों के शब्दों का अनुकरण करके भाषा बना सकता है, तो वह पशु-पक्षियों से निकृष्ट सिद्ध होता है।

२. विश्व की भाषाओं में ध्वन्यनुकरण वाले शब्दों की संख्या एक प्रतिशत भी नहीं है, अतः यह भाषोत्पत्ति की समस्या का उचित समाधान नहीं है।

३. कुछ भाषाओं में ध्वन्यनुकरण-शब्द हैं ही नहीं। जैसे—उत्तरी अमेरिका की 'अथवस्कन' भाषा। इसमें ऐसे शब्दों का अभाव है।

४. यदि ध्वन्यनुकरण ही आधार होता तो सभी भाषाओं में उन अर्थों के लिए समान शब्द होते। काक-कौवा, कोयल-कोकिल, झरना-निर्झर आदि का ही भेद नहीं है, अपितु अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं में कौवा, मेढक, बिल्ली, कुत्ता आदि के लिए सर्वथा पृथक् शब्द हैं।

५. यह मत अधिक से अधिक एक प्रतिशत शब्दों का समाधान प्रस्तुत करता है। ९९ प्रतिशत शब्दों के लिए यह मत मौन है।

आंशिक रूप में स्वीकार्य होते हुए भी यह मत सम्पूर्ण भाषा की उत्पत्ति के लिए अस्वीकार्य है। ऑटो येस्पर्सन (Otto Jespersen) ने इसे आंशिक मान्यता प्रदान की है।

५. **आवेग-सिद्धान्त** (Interjectional Theory, Pooh-pooh Theory)—इस सिद्धान्त को मनोभावाभिव्यञ्जकतावाद, मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनोरागव्यंजकशब्द-मूलकतावाद, पूह-पूह-वाद आदि नामों से व्यक्त किया जाता है। इस सिद्धान्त का कथन है कि आदिकाल में मनुष्य ने अपने हर्ष, शोक, विस्मय, भय, घृणा, क्रोध आदि भावावेश को प्रकट करने वाले शब्दों या ध्वनियों का उच्चारण किया। इन ध्वनियों से ही बाद में भाषा बन गई। हर्ष में अहो, अहा, आहा, वाह आदि; शोक में आह, ओह, हाय, हाय रे; क्रोध में आः; घृणा में छिः, धत्, दुत्, धिक् आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। अंग्रेज़ी में मनोभाव-सूचक Pooh (पूह), Pish (पिश), Fie (फाइ), Oh (ओह) आदि शब्द हैं। इन आवेग-सूचक ध्वनियों के प्रयोग से प्रारम्भ में मनुष्य अपने मनोभावों को प्रकट करता था। धीरे-धीरे भाषण-शक्ति का विकास हुआ और भाषा का प्रारम्भ हुआ।

विकासवाद के जन्मदाता डार्विन (Darwin) ने 'The Expression of the Emotions' में आवेग ध्वनियों का कारण शारीरिक माना है। घृणा में पूह (Pooh) या पिश (Pish) ध्वनि निकलती है, विस्मय की स्थिति में ओह (Oh) ध्वनि निकलती है।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में ये दोष हैं—

१. आवेग-शब्द आवेगात्मकता को ही प्रकट करते हैं, सामान्य भावाभिव्यक्ति को नहीं, अतएव इनका सम्बन्ध भाषा के मुख्य अंग से नहीं है।

२. प्रो० बेन्फी (Benfey) ने इस मत का खण्डन किया है।[1] आवेग-ध्वनियाँ भाषा की अक्षमता को सूचित करती हैं कि ये भाव भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते हैं, अतः इनसे भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

३. आवेग-ध्वनियाँ सभी भाषाओं में समान नहीं हैं। जैसे, पीड़ा को प्रकट करने के लिए जर्मन—Au (आउ), फ्रेंच—Ahi (आहि), अंग्रेज़—Oh (ओह) कहते हैं। किप्लिंग (Kipling) ने मनोरंजक उदाहरण दिया है कि रोते समय अफ़गान ऐ-ऐ (Ai, Ai) कहता है, हिन्दुस्तानी—ओह! हो! और अंग्रेज़—ओ! ओ! (Ow, ow)। इससे ज्ञात होता है कि सभी भाषाओं में आवेग-शब्द समान नहीं हैं।

४. ये शब्द विचार-पूर्वक प्रयुक्त नहीं होते हैं, अपितु आवेग की तीव्रता में अनायास निकल पड़ते हैं।

५. भाषा में आवेग-शब्दों की संख्या नगण्य होती है।

---

1. 'The interjection is the negation of language, for interjections are employed only when one either cannot or will not speak'.

—(Benfey) *Language* : Otto Jespersen, p. 415.

६. भाषा चिन्तन-प्रधान होती है। आवेग-शब्दों में चिन्तन का नाम भी नहीं है।

७. आवेग-ध्वनियों को यथावत् लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता है। ये ध्वनियाँ इतनी अस्पष्ट होती हैं कि कोई उन्हें च···च समझता है, कोई त···त।

यह सिद्धान्त भाषोत्पत्ति की समस्या हल करने में सर्वथा असमर्थ है।

६. श्रम-ध्वनि-सिद्धान्त (Yo-he-ho Theory)—इस सिद्धान्त को श्रमापहारमूलकतावाद या यो-हे-हो-वाद भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक न्वारे (Noiré) नामक भाषाशास्त्री हैं। इस सिद्धान्त का अभिप्राय है कि जब मनुष्य शारीरिक परिश्रम करता है, उस समय उसके श्वास-प्रश्वास बढ़ जाते हैं। मांसपेशियों में ही नहीं, अपितु स्वरतन्त्री में भी संकोच-विस्तार बढ़ जाता है। फलस्वरूप कुछ ध्वनियाँ अनायास निकल जाती हैं। इससे परिश्रम करने वाले को कुछ आराम मिलता है। श्रम-जन्य ध्वनि होने के कारण इसे **श्रम-ध्वनि** कहा गया है। **जैसे**, कपड़ा धोते समय धोबी 'हियो' या 'छियो' कहता है। इसी प्रकार भारी सामान उठाते समय मजदूर हो-हो, हूँ-हूँ कहते हैं; मल्लाह हैया-हैया आदि कहते हैं।

न्वारे के मतानुसार ऐसे शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई है।

समीक्षा

१. यह मत भाषा की उत्पत्ति के लिए सर्वथा असन्तोषजनक है।

२. शारीरिक परिश्रम-जन्य ये शब्द निरर्थक हैं। भाषा की उत्पत्ति के लिए सार्थक शब्दों की आवश्यकता है।

३. अर्थ-हीन शब्दों से भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

यह मत सबसे निकृष्ट और अग्राह्य है।

७. इंगित-सिद्धान्त (Gesture-Theory)—इस सिद्धान्त के प्रस्तावक डॉ० राये हैं। १९३० ई० के लगभग प्रो० रिचार्ड ने अपनी पुस्तक 'Human Speech' में 'मौखिक इंगित सिद्धान्त' (Oral gesture Theory) नाम से इसे प्रस्तुत किया है। आइसलैण्ड की भाषाओं के विद्वान् अलेक्ज़ेन्डर जोहानसन ने भारोपीय, हिब्रू, चीनी आदि भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अपनी तीन पुस्तकों में इंगित सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की है। डार्विन ने भी छह असंबद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त की पुष्टि की थी। ये भाषा के विकास की चार सीढ़ियाँ मानते हैं। १. भावव्यंजक ध्वनियाँ—भय, हर्ष, क्रोध आदि की अवस्था में ध्वनियों द्वारा अपने भावों को प्रकट करना। २. अनुकरणात्मक शब्द—पशु-पक्षियों आदि की ध्वनियों के अनुकरण पर शब्द-रचना। ३. भावसंकेत या इंगित—अंगों के संकेतों द्वारा भाव-प्रकाशन। इसे जोहानसन ने 'अनजाने अनुकरण' (Unconscious imitation) कहा है। इसमें केवल स्थूल वस्तुओं के लिए शब्द बने। ४. इसमें सूक्ष्म भावों के लिए शब्द बने।

इस मत का कथन है कि प्रारम्भ में मानव ने अपनी आंगिक चेष्टाओं का ही वाणी के द्वारा अनुकरण किया और उससे भाषा बनी। जैसे—पानी पीने के समय होंठों के मिलने और साँस अन्दर खींचने पर 'पा' जैसी ध्वनि हुई। इसलिए 'पा' का अर्थ 'पीना'

हुआ। इसी प्रकार पीने के समय सर या सरब ध्वनि को लेकर 'शरबत' शब्द बना। इसी प्रकार अनेक शब्द बने हैं।

समीक्षा

यह सिद्धान्त भी सारहीन है।

१. अपने अनुकरण पर शब्द-रचना हास्यास्पद है। दूसरे के अनुकरण पर शब्द-रचना मान्य हो सकती है।

२. हाथ, पैर, ओष्ठ आदि के आधार पर शब्द-रचना की कल्पना निर्मूल है।

३. इंगित से भाषोत्पत्ति मानने पर पशु-पक्षियों की भाषा भी विकसित रूप में होती। उसमें भी विकास दृष्टिगोचर होता।

४. इंगित-सिद्धान्त पर बने शब्दों की संख्या भाषा में बहुत कम है।

८. संपर्क-सिद्धान्त (Contact Theory)—इस मत के प्रवर्तक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी० रेवेज़ (G. Revesz) हैं। इस मत का कथन है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। उसमें पारस्परिक संपर्क की प्रवृत्ति जन्मसिद्ध है। इसी आधार पर समाज बनता है। प्रारम्भ में भूख आदि की अभिव्यक्ति के लिए इंगित एवं मौखिक अभिव्यक्ति का सहारा लिया गया होगा। उस समय जो मौखिक ध्वनियाँ निकलीं, उनसे ही धीरे-धीरे भाषा बनी। पहले यह संपर्क भावों के स्तर (Emotional Contact) पर रहा होगा। बाद में विकास होने पर विचार के स्तर (Intellectual Contact) पर हुआ होगा। संपर्क ध्वनि का विकास संसूचक ध्वनि से होता है, इसमें हल्ला करना, पुकारना आदि सम्मिलित है। इसी अवस्था में भाषा के आदिम रूपों का प्रारम्भ हुआ होगा। प्रारम्भ में ये शब्द सम्बन्धियों और निकटस्थ वस्तुओं के लिए होंगे। प्रारम्भिक शब्दों का सम्बन्ध क्रिया से रहा होगा। जैसे—'माँ' का अर्थ रहा होगा—माँ दूध दो या पानी दो। बाद में छोटे वाक्य बने होंगे। विचारों के स्तर पर संपर्क बढ़ने से भाषा का विकास हुआ होगा।

समीक्षा

प्रो० रेवेज़ मनोविज्ञान के आचार्य हैं। यह मत बाल-मनोविज्ञान, जीव-मनोविज्ञान और आदिम प्राणि-मनोविज्ञान पर आश्रित है एवं तर्कसंगत है। कुछ भाषाशास्त्री इस मत का सुविस्तृत रूप एवं विवरण चाहते हैं, अतएव कासिडी जैसे विद्वान् इस मत को अमान्य न कहते हुए भी भाषोत्पत्ति के प्रश्न को अनिर्णीत मानते हैं।

९. संगीत-सिद्धान्त (Sing-song Theory)—इसको प्रेम सिद्धान्त (Woo-woo Theory) भी कहा जाता है। डार्विन, स्पेन्सर और येस्पर्सन अंशतः इस सिद्धान्त को मानते हैं। इस सिद्धान्त का कथन है कि मानव के संगीत से भाषा की उत्पत्ति हुई है। आदिम मानव भावुक एवं संगीत-प्रिय रहा होगा। वह रिक्त समय में कुछ गुनगुनाता रहा होगा। उसकी गुनगुनाने की निरर्थक ध्वनियाँ धीरे-धीरे वस्तुओं से संबद्ध हो गईं और वे सार्थक हो गईं। प्रेम, शोक, दुःख, हर्ष आदि के अवसर पर उच्चरित ये ध्वनियाँ सार्थक शब्द बनीं और भाषा की उत्पत्ति हुई।

समीक्षा

गुनगुनाने से भाषा की उत्पत्ति होना केवल अनुमान पर आश्रित है। इसका कोई प्रमाण नहीं है। प्रारम्भिक व्यक्ति गुनगुनाता था, इसका भी कोई पुष्ट आधार नहीं है। अत: यह सिद्धान्त अस्वीकार किया गया है।

१०. प्रतीक-सिद्धान्त (Symbolic Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि संयोग से या अन्य किसी सामान्य सम्बन्ध से किसी शब्द का किसी अर्थ से सम्बन्ध हो जाता है और वह शब्द उस अर्थ का प्रतीक हो जाता है। प्रो० स्वीट ने प्रारम्भिक भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक मानी है। भाषा-विज्ञान में ऐसे शब्दों को 'नर्सरी' शब्द (Nursery Word) कहते हैं। ये माता, पिता, भाई, बहिन आदि से सम्बद्ध होते हैं। इनमें अधिकांश में प्रारम्भिक ध्वनि ओष्ठ्य होती है। अत: अधिकांश भाषाओं में माता, पिता, भाई आदि के वाचक शब्द पवर्ग से प्रारम्भ होते हैं। हिन्दी—माता, पिता, भाई, बाबा, मामा, मामी आदि। अंग्रेज़ी में—Mother, Father, Brother आदि। जर्मन—Mutter (मुट्टेर, माँ), Vater (फाटेर, पिता), Bruder (ब्रुडेर, भाई), फ्रेंच—Mēre (मैर, माँ), Pēre (पैर, पिता), Frēre (फ्रैर, भाई), ग्रीक—Meter (मेटेर, माँ), लैटिन—Mater (माटेर, माँ) आदि।

समीक्षा

प्रतीक सिद्धान्त मूलत: भाषा के प्रारम्भिक शब्दों की व्याख्या करता है। भाषा में प्रारम्भ में 'नर्सरी' शब्द आये, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह सिद्धान्त स्थूल अर्थ के बोधक शब्दों की उत्पत्ति बता सकता है, सूक्ष्म अर्थ के बोधक शब्दों की उत्पत्ति बताने में असमर्थ है।

११. समन्वय-सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के समर्थक एवं प्रवर्तक प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री हेनरी स्वीट (Henry Sweet) हैं। उन्होंने कोई नया सिद्धान्त प्रस्तुत करने की अपेक्षा सर्व-सिद्धान्त-संकलन को अधिक उपयुक्त समझा है। उनका कथन है कि यदि उपर्युक्त सिद्धान्तों में से आवश्यक सिद्धान्तों को एकत्र कर लिया जाय तो भाषा की उत्पत्ति की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है।

प्रो० स्वीट के मतानुसार भाषा का प्रारम्भ अनुरणनात्मक, भावाभिव्यंजक और प्रतीक शब्दों से हुआ। उन्होंने इसके साथ 'उपचार-प्रयोग' को भी स्थान दिया है। उपचार से अभिप्राय है—सादृश्यमूलक गौण या लाक्षणिक प्रयोग। जैसे—चापलूसी के लिए 'मक्खन' शब्द के आधार पर 'मक्खन लगाना' शब्द। सादृश्य के आधार पर 'आलू की आँख', गुरु वचन, लघु चेष्टाएँ, मधुर आकृति, कटु वचन, आदि प्रयोग होने लगे और शब्दों का अनेक अर्थों में प्रयोग होने से अर्थ-विकास हुआ। इस प्रकार भाषा का विकास हुआ।

प्रो० स्वीट ने प्रारम्भिक शब्दों को तीन भागों में बाँटा है—१. अनुकरणात्मक (Imitative)—जैसे म्याऊँ (बिल्ली), Cuckoo (कुकू, कोयल), काक (कौवा), घुग्घू (उल्लू) आदि। २. मनोभावाभिव्यंजक (Interjectional)—जैसे हा, ओह, धिक्, छि: आदि। ३. प्रतीकात्मक (Symbolic)—जैसे उपर्युक्त नर्सरी शब्द। योग्यतमावशेष

(Survival of the Fittest) नियमानुसार प्रारम्भिक असंख्य शब्दों में से योग्यतम शब्द शेष बचे हैं।

समीक्षा

भाषा की उत्पत्ति समझाने के लिए अन्य कोई एकमत शुद्ध न होने से सबका समन्वय उपयुक्त माना गया। यह सिद्धान्त सामान्यतया निर्विरोध रूप से स्वीकार किया जाता है।

१२. प्रतिभा-सिद्धान्त—प्रतिभा-सिद्धान्त के संस्थापक आचार्य भर्तृहरि हैं। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने प्रतिभा को विश्व की आत्मा माना है और उसे सर्वशक्ति-सम्पन्न बताया है।

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी ।
यत्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते ॥ (वाक्य० १-११८)

अर्थात् शब्दों (भाषा) में ही विश्व को बाँधने की शक्ति है। शब्द (भाषा) नेत्र है और प्रतिभा आत्मा है। यही शब्द (भाषा) विभिन्न रूपों में प्रकट होता है।

ऊपर ११ सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति के विषय में दिये गये हैं, परन्तु संपर्क सिद्धान्त, प्रतीक-सिद्धान्त और समन्वय-सिद्धान्त, इन तीन सिद्धान्तों को छोड़कर शेष सिद्धान्त पूर्णतया और कुछ अंशतः अस्वीकृत किये गये हैं। ११ सिद्धान्तों को मिला देने पर भी भाषा के १ या २ प्रतिशत शब्दों की समस्या का समाधान हो पाता है, ९८ या ९९ प्रतिशत शब्द अछूते ही रहते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य में एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जो इन सिद्धान्तों के समन्वित रूप से भी बनाया जा सके—

'भाषा यादृच्छिक ध्वनि-संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।'

इन सिद्धान्तों में कुछ मौलिक न्यूनताएँ हैं—

१. ये सिद्धान्त यह मानकर चलते हैं कि—

(क) मानव आदिकाल में मूक था। यह सिद्धान्त शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वीकार्य नहीं है।

(ख) आदिकाल में विकास की प्रक्रिया जितनी शीघ्रता से पशु-पक्षियों आदि पर परिलक्षित होती है, उतनी मनुष्य पर नहीं। पशु-पक्षियों में रंभाना, चहचहाना, शब्द करना जन्मसिद्ध है, पर मनुष्य में नहीं।

(ग) मनुष्य में कोई मौलिक उद्भावना या शक्ति नहीं थी।

(घ) मनुष्य आदिकाल में अत्यन्त असहाय था। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ था। वह कुछ बोल नहीं सकता था।

२. इन सभी सिद्धान्तों के द्वारा स्थूल अर्थ के बोधक कतिपय शब्दों की व्याख्या हो जाती है, पर ९९ प्रतिशत शब्दों के लिए कोई उत्तर नहीं मिलता है। सूक्ष्म अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए कोई भी शब्द इन सिद्धान्तों के द्वारा नहीं बन पाते हैं।